36.0 पूर्वमीमांसा में शब्द का नित्यत्वानित्यत्व

- डॉ. प्रमोद, प्रवक्ता (संस्कृत) राजकीय व. मा. विद्यालय, कौराली
  Email. Shpramod2020@gmail.com

शोध-सार

वेदों की प्रामाणिकता एवं प्रतिपाद्य को स्थापित करने के लिए आचार्य जैमिनि ने पूर्वमीमांसा दर्शन की रचना की। उन्होंने अपने दर्शनशास्त्र के अन्तर्गत शब्द की नित्यता तथा अनित्यता को सूत्र शैली में बहुत ही तार्किक और युक्तिपूर्वक प्रस्तुत किया है। उन्होंने शब्द के अनित्यत्व का खण्डन करके नित्य को स्थापित किया है। मीमांसकों के अनुसार वर्ण यानी क, ख, ग जैसे अक्षर और उनसे बने शब्द नित्य हैं। उनका कभी नाश नहीं होता। हम जब बोलते हैं तो शब्द को उत्पन्न नहीं करते केवल प्रकट करते हैं। शब्द का उच्चारण अर्थात् ध्वनि अनित्य है। वह उत्पन्न होती है और नष्ट हो जाती है। लेकिन वर्ण रूपी शब्द सदा आकाश में विद्यमान रहता है। शब्द-अर्थ सम्बन्ध भी नित्य है। जैसे गाय शब्द और गाय रूपी पशु का सम्बन्ध किसी ने बनाया नहीं। यह सम्बन्ध स्वाभाविक और सनातन है। इसलिए वेद अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी मनुष्य ने नहीं बनाए। अगर शब्द और उसका अर्थ अनित्य होता तो वेदों के मंत्रों का अर्थ हर काल में परिवर्तित हो जाता। धर्म का ज्ञान निश्चित नहीं रहता। इसलिए पूर्वमीमांसा दर्शन शब्द को नित्य मानकर वेदों का स्वतः प्रमाण्य सिद्ध करता है। पूर्वमीमांसा का यह सिद्धान्त मुख्यतः वेदों की नित्यता और धर्म-ज्ञान की स्थिरता बचाने के लिए है। इस शोध-पत्र के माध्यम से पूर्वमीमांसा दर्शन में उपलब्ध शब्द के नित्य-अनित्य विषय को समझाने का प्रयास किया जायेगा।

बीज-शब्द- *पूर्वमीमांसा, वेद, शब्द-नित्य, शब्द-अनित्य।*

मानव पारस्परिक भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त एवं समझने के लिए जिस उत्कृष्ट साधन का अवलम्बन करता है। वह लोक में भाषा के रूप में व्यवहत होती है। यद्यपि संकेतादि माध्यमों से भी भाव-विचारादि की अभिव्यक्ति तथा अवगति सम्भव है, पुनरपि सूक्ष्मरूप में विद्यमान भावों तथा विचारों की स्पष्ट अभिव्यक्ति के लिए भाषा अपरिहार्य हो जाती है। क्योंकि जितनी स्पष्टता के साथ भावादि सम्प्रेषण भाषा से सम्भव है, उतना अन्य किसी साधन से नहीं। यदि मनुष्य के पास भाषारूपी अमोघ-अस्त्र नहीं होता तो मनुष्य भी पशु-पक्षियों की भांति अपने भावों तथा विचारों को स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने में असमर्थ होता, भाषा(शब्द) के बिना तो विचार करना भी असम्भव है।[1] भाषा मनुष्य की प्रवृत्ति तथा प्रकृति का यथार्थ दर्पण है।[2]
इसी कारण से भारतीय चिन्तन परम्परा की सभी विधाओं में शब्द को लेकर सुदीर्घ विचारश्रृङ्खला दृष्टिगोचर होती है। वैदिक वाङ्मय से लेकर दर्शन साहित्य तक शब्द विषयक अध्ययन दिखाई देता है। अश्रुतिमूलक तथा श्रुतिमूलक दर्शनों में शब्द के मत में विभिन्न प्रकार के मत प्राप्त होते हैं। दर्शनों में शब्द के नित्यानित्य पर चर्चा उपलब्ध होती है। सभी दर्शनकारों ने शब्द के नित्यानित्य के विषय में पृथक्-पृथक् तर्क दिये हैं।

पूर्वमीमांसा दर्शन में मुख्य रूप से यज्ञ को समस्त सुखों का साधन माना जाता है। यह बात 'स्वर्गकामो यजेत', पुत्रकामो .... आदि वाक्यों से सिद्ध होती है। यज्ञ का सम्पादन करना वेदों के मन्त्रों के बिना श्रेयस्कर नहीं माना जाता है। अतः जो वेद मन्त्रात्मक है,उसका नित्यत्व प्रमाणित करने लिए सर्वप्रथम मन्त्रों का नित्यत्व बताना आवश्यक है और मन्त्रों का नित्यत्व तभी सम्भव है जब वाक्य या शब्द का नित्यत्व स्वीकार किया जाए, क्योंकि मन्त्र वाक्य या शब्द मूलक होते हैं और वेद मन्त्रमूलक हैं। अतः जब शब्द का नित्यत्व माना जाएगा, तब ही मन्त्र नित्य माने जाएंगे और जब मन्त्र नित्य माने जाएंगे, तो ही वेद नित्यत्व माना जावेगा। जिससे वेदों के प्रतिपाद्य यज्ञों से उत्पन्न अपूर्व से स्वर्ग तथा अन्य सांसारिक सुखों की प्राप्ति सम्भव हो सकेगी। सम्भवतः इन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर महर्षि जैमिनि ने शब्द के अनित्यत्व और नित्यत्व विषयक तर्कपूर्ण चर्चा को सूत्रात्मक शैली में

[1] न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते। वाक्यपदीय

[2] Human language is a very complex phenomenon. But its supreme relevance lies in the recognition of the fact that thinking is almost impossible without language and hence by analyzing language we can analyze thought. –B.K. Matilal, The world and the world P. 3

प्रस्तुत किया है।

शब्द की अनित्यता और नित्यता की सिद्धि जैमिनि ने मीमांसादर्शन के तर्कपाद में छठे सूत्र से लेकर २३ वें सूत्र तक की है । इनमें ६-११ तक के सूत्रों में शब्द-नित्यत्व के विरोध में युक्तियां दी गई हैं। शेष सूत्र इन युक्तियों के खण्डन में या शब्द-नित्यत्व के समर्थन में दी गई हैं। सर्वप्रथम पूर्वपक्षियों के मन्तव्य को ध्यान में रखते हुए शब्द के अनित्यत्व का प्रतिपादन करने वाले तर्कों का निरूपण करेगें।

पूर्वपक्ष –

शब्द इसलिए अनित्य है, क्योंकि पुरुष द्वारा प्रयत्न किये जाने के पश्चात् ही शब्द की उत्पत्ति देखी जाती हैं। शब्द के उत्पन्न होने में पुरुष का किस प्रकार का प्रयत्न लगता है, इसका वर्णन हमें वर्णोच्चारण शिक्षा[3] ग्रन्थ में प्राप्त होता है। पुरुषप्रयत्न तथा शब्द की जन्यता में एक कारणकार्यभाव है। विना प्रयत्न के शब्द उत्पन्न नहीं होता, इसलिए वह कृतक हैं ।[4] जिस प्रकार घट, पट आदि वस्तुएं पुरुष के द्वारा प्रयत्नपूर्वक बनाई जाती हैं तथा वे सभी नष्ट हो जाती हैं । इससे ज्ञात होता है कि जो वस्तु प्रयत्नपूर्वक उत्पन्न की जाती हैं, वे अनित्य होती हैं। अतः शब्द भी प्रयत्न पूर्वक किया जाता है, इसलिए वह भी अनित्य है।

(२) उच्चारण किया गया शब्द को क्षणभर में ही नष्ट हो जाता है, हम शब्द को स्थिर नहीं देखते हैं।[5] शब्द उच्चारित होते होते ही नष्ट हो जाता है। जैसे अमुक व्यक्ति गौः, अश्वः आदि शब्द का स्थान, प्रयत्नों आदि से उच्चारण करता है। वह पहले ग् पुनः औ और फिर विसर्ग का क्रम से उच्चारण करता है इस प्रकार उच्चारण होते होते ही नाश भी हो जाता है। इसी प्रकार अश्व आदि शब्दों में भी क्रम पूर्वक ही उच्चारण होता है। इससे निश्चय होता है कि उच्चारित शब्दक्षण भर में नष्ट हो जात है, इसलिये शब्द अनित्य है।

(३) शब्दों के सम्बन्ध में **'करोति'** (उत्पन्न करता है) जैसी क्रियाऐं प्रयुक्त होती हैं । जैसे- अमुक व्यक्ति किसी को कहता है कि **शब्दं कुरु,मा शब्दं कार्षीः** [6] अर्थात् शब्द करो, शब्द मत करो इस प्रकार से व्यवहार करता है। इससे ज्ञात होता है कि शब्द को उत्पन्न किया जाता हैं ।[7] जो वस्तुएं या पदार्थ नित्य होते हैं, उनके साथ करोति जैसी क्रियाओं का योग भाषिक व्यवहार में कहीं उपलब्ध नहीं होता है। अतः शब्द के साथ 'करोति' क्रिया का योग होने के कारण वह अनित्य होता है।

(४) यदि शब्द नित्य होता तो एक होता जैसा कि सामान्य(जाति), आकाशादि सभी नित्य पदार्थ सामान्यतया एकरूप होते हैं, किन्तु हम शब्द को एक ही समय में भिन्न-भिन्न स्थलों में उच्चारित होते पाते हैं।[8] जिस प्रकार लोक में यह देखा जाता है कि एक ही शब्द अनेक स्थलों पर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के द्वारा उच्चरित होता है, यदि शब्द नित्य है तो वह एक समय में अनेक स्थलों पर उच्चारित नहीं हो सकता। अतः इस तथ्य से यह सिद्ध होता है कि नानास्थानों में प्रयुक्त होने वाला शब्द अनित्य है ।

(५) शब्दों में हम प्रकृति-विकृति-भाव देखते हैं । जैसे कि इ का य् हो जाना- दधि+अत्र+दध्यत्र।[9] इ प्रकृति है और य् विकृति । यहां इकार यकार रूप में विकृत हो जाता है । इसका अर्थ है कि जब शब्द में विकार उत्पन्न हो सकता हैं, तब यह नित्य नहीं हो सकता, अपितु अनित्य ही होगा। अतः शब्द में विकार होने के कारण वह अनित्य है। [10]

(६) शब्द को अनित्य मानने वाले अन्त में शब्द की अनित्यता के लिए यह युक्ति देते हैं कि शब्द को उत्पन्न करने वाले वक्ताओं के आधिक्य से शब्द में भी वृद्धि होती है, बहुत अधिक ध्वनि हो जाती है।[11] यदि शब्द नित्य होता तो कुछ व्यक्ति बोले या अधिक

[3] आकाशावायुप्रभवः समुच्चरन्

[4] कर्मैके तत्र दर्शनात्-सू० ६

[5] अस्थानात्-सू० ७

[6] महाभाष्यम् पस्पशाह्निक

[7] करोति-शब्दात्-सू० ८

[8] सत्त्वान्तरे च यौगपद्या-. ९

[9] इको यणचि, अष्टाध्यायी ६/०१/

[10] प्रकृतिविकृत्योश्च-सूत्र १०

[11] वृद्धिश्च कर्तृभूम्नाऽस्य-सू० ११

व्यक्ति बोले, शब्द उतना ही रहता। इससे अनुमान होता है कि एक-एक व्यक्ति के द्वारा शब्द के अवयवों को उत्पन्न किया गया हैं। जिससे इतनी तीव्रता से ध्वनि उत्पन्न होती है तथा महान् शब्द उत्पन्न होता है।

उपर्युक्त समस्त तर्कों के आधार पर शब्द की अनित्यता सिद्ध की गई है। पूर्वपक्षियों के इन सभी तर्कों का मीमांसक उत्तरपक्ष के रूप में खण्डन बडे ही तार्किक ढंग से करते हैं।

उत्तरपक्ष –

(१) प्रयत्न के वाद शब्दोत्पत्ति का जो आक्षेप हुआ है, वह इसलिए असंगत हैं कि शब्द नित्य भी हो तो भी अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्न लगेगा ही। यदि दूसरे स्पष्ट तर्क से शब्द को नित्य सिद्ध भी कर दिया जाए तो भी प्रयत्न आवश्यक ही लगेगा। शब्द नित्य हो या अनित्य-दोनों स्थितियों में प्रयत्न आवश्यक है।[12] अनित्य पक्ष में शब्द की उत्पत्ति के लिए तथा नित्य पक्ष में उसकी अभिव्यक्ति के लिए प्रयत्न होता ही है। इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि प्रयत्न के आधार पर शब्द को अनित्य नहीं कहा जा सकता।

(२) शब्द के उच्चरित होते होते नष्ट होने के कारण शब्द अनित्य है। यह आक्षेप भी व्यर्थ है। वास्तव में ये शब्द का सुनाई पडना संयोग-विभाग के कारण ही है। शब्दोपलब्धि का निमित्त वही है। इसी संयोग-विभाग से शब्द अभिव्यक्त होता है, वह उत्पन्न नहीं होता। उच्चारणसंस्थान के प्रयत्नों से वायु में अभिघात होता है, इस अभिघात से वायु दूसरे वायु को प्रेरित करता है। प्रेरणा की यह परंपरा निरन्तर चलती है और सभी दिशाओं में संयोग-विभाग उत्पन्न होते हैं। वेग के अनुसार संयोग-विभाग वढते चले जाते हैं। वायुतरंगों के कारण शब्द श्रवणगोचर होते हैं। तरंगों के न रहने पर सुनाई नहीं पडते हैं। यही उच्चरित तथा नष्ट होने का रहस्य है। तात्पर्य यह है कि वायु के संयोग-विभाग ही नित्य शब्द को अभिव्यंजित करते हैं। उच्चारण के बाद भी शब्द रहता है, किन्तु संयोग-विभागरूप अभिव्यंजक के अभाव में सुनाई नहीं पडता है।[13]

(३) 'शब्दं कुरु' मा शब्दं कार्षीः जैसे प्रयोगों में करोति क्रिया का योग होने से इसका अर्थ शब्द को उत्पन्न करना नहीं हैं, अपितु शब्द का प्रयोग करना है। शब्द के नित्य होने पर 'शब्दप्रयोगं कुरु' कहने में असंगति नहीं हैं।[14]

(४) शब्द के युगपत् अनेक देशों में श्रवण की युक्ति भी ठीक नहीं हैं। क्योंकि सूर्य एक है और एक देश अवस्थित है, किन्तु एक ही साथ अनेक देशों में अवस्थित दिखलाई पडता है। इसी प्रकार शब्द भी एक ही रूप का है और वह अनेक देशों में सुनाई पडता है। जिससे भिन्नता देशों में परिलक्षित होती है, शब्द में नहीं।[15]

(५) पूर्वपक्षी द्वारा दध्यत्र जैसे प्रयोगों में जो इकार का विकार यकार को मानकर शब्द में विकार दिखा कर उसका अनित्यत्व सिद्ध किया है, वह ठीक नहीं है। यहाँ इकार और यकार दोनों दो पृथक् वर्ण हैं। यहाँ दध्यत्र में इकार का विकार यकार को नहीं माना जा सकता है। इसको कुछ इस प्रकार समझ सकते है- जिस प्रकार चटाई बनाने के लिए लोग वीरण-घास का ग्रहण करते हैं, या दही बनाने के लिए दूध लेते हैं। वैसे ही य् का प्रयोग करने के लिए इ का उपादान करें। तथ्य यह है कि दोनों वर्णों में सादृश्य है- सादृश्यमात्र देख-कर प्रकृति-विकृति-भाव मान ले।[16] यह ठीक नहीं हैं।[17]

(६) अनेक वक्ताओं के एक साथ बोलने से जो तीव्र ध्वनि उठती है, वह नाद की वृद्धि है शब्द की नहीं। शब्द का कोई अवयव नहीं होता कि प्रत्येक पुरुष के द्वारा प्रयुक्त होने पर उसमें प्रचय या वृद्धि हो। अनेक पुरुषों के द्वारा मृदु ध्वनि का उच्चारण होता है तो वे ही अक्षर श्रवण-रन्ध्र के सम्पूर्ण मण्डल को निरन्तर संयोग-विभाग के कारण भरने लगते हैं जिससे 'महान् शब्द' (तीव्र, ध्वनि) हो जाता है। निरन्तर संयोग-विभाग होने से जब शब्द की अभिव्यक्ति होती है। तब उसे नाद कहते हैं।[18] अतः शब्द को अनित्य नहीं माना जा सकता है।

---

12 समं तु तत्र दर्शनम्--सू० १२

13 सतः परमदर्शनं विषयानागमात्-सू० १३

14 प्रयोगस्यपरम्-सू० १४

15 आदित्यवद् योगपद्यम्-सू० १५

16 शाङ्करभाष्य (१।१।१६) न हि दधिपिटकं दृष्ट्वा कुन्दपिटकं च प्रकृतिविकार-भावोऽवगम्यते।

17 वर्णान्तरमविकारः, -सू० १६

18 नादवृद्धिपरा- १७, शा० भा० (१।१।१७)-संयोग-विभागा नैरन्तर्येण क्रियमाणाः शब्दमभिव्यञ्जन्तो नादशब्दवाच्याः।

यहाँ तक जैमिनि शब्द-नित्यत्व की सिद्धि निषेधात्मक प्रक्रिया से करते हैं। यहाँ पर वे पूर्वपक्षियों की सम्भावित आशङ्काएँ उपस्थित करके उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं। इसके बाद उन्होंने कुछ सूत्रों में शब्द-नित्यत्व की साधक युक्तियाँ या तर्क दिये हैं -

नित्यस्तु स्याद् दर्शनस्य परार्थत्वात्[19] - शब्द इसलिए नित्य है क्योंकि शब्द का दर्शन अर्थात् प्रयोग दूसरे व्यक्तियों के अर्थ बोध कराने के लिए होता है। यदि उच्चारण के अनन्तर शब्द का नाश हो जाए तो कोई व्यक्ति किसी दूसरे से कुछ कह नहीं सकेगा। दूसरी ओर यदि शब्द नित्य माना जाए तभी यह स्वाभाविक होगा कि पुनः पुनः उच्चारित होने तथा सुने जाने के अनन्तर इसका अर्थ अन्य व्यक्तियों को समझ में आ जाए।[20] प्रत्येक अनुवर्ती शब्द तथा उसके अर्थ में सम्बन्ध की स्थापना करते चलना असंभव होता है-इसलिए बार-बार सुनने से अर्थ बोध होता है। यदि पूर्व में सुने गये शब्द के सादृश्य से अनुवर्ती शब्द का अर्थ बोध हो तो इस स्थिति में अयथार्थ बोध होने की सम्भावना बनी रहती है। जैसे-शाला शब्द से माला का बोध हो जाए। अतः शब्द वही रहता है, बार-बार सुनाई पडता है। अनित्य मानेगें तो प्रत्येक बार नया शब्द सुने जाने का प्रसङ्ग हो जायेगा। यह उचित नहीं। इसलिए शब्द नित्य है, एक ही शब्द पुनः पुनः सुना जाता है। हमारा शब्द प्रयोग दूसरों को अर्थ बोध कराने के लिए होता है।

सर्वत्र यौगपद्यात्[21] - गो शब्द का उच्चारण करने पर एक ही साथ यह शब्द सभी गौओं का प्रत्यय उत्पन्न करता है। इसलिए यह आकृति या जाति का वाचक है। जाति के साथ शब्द का संबन्ध उत्पन्न नहीं किया जा सकता, क्योंकि जो भी व्यक्ति संबन्ध करने वाला होगा वह जाति का निर्देश करके ही संबन्ध उत्पन्न करेगा। उसे कहना होगा कि "गौ शब्द इस जाति का बोधक माना जाए"। इस निर्देश के पूर्व तक तो संबन्ध बना ही नहीं होगा तब वह गोशब्द का प्रयोग किये बिना किस प्रकार इस विशिष्ट जाति का उपदेश कर सकेगा? अधिक से अधिक वह एक गोव्यक्ति के पिण्ड (गाय के शरीर) को दिखा सकता है, किन्तु उस शरीर में तो कई जातियों की सत्ता है। जैसे पृथ्वी, द्रव्य इत्यादि। अतः शब्द को अनित्य की स्थिति में जाति (अर्थ) के साथ शब्द का संबन्ध दिखाना असंभव है। किन्तु यदि शब्द को नित्य मान ले तो कठिनाई का हल निकल जाता है। नित्य 'गो' शब्द होने पर वही शब्द बार-बार सुना जायेगा, पूर्व में भी कई बार सुना जा चुका है तथा विभिन्न गोव्यक्तियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। अन्वय तथा व्यतिरेक से वह शब्द आकृति या जाति का बोध करा सकता है। इसलिए भी (शब्द के जातिवाचक होने के कारण) शब्द नित्य है।

संख्याभावात्[22] - लोक में व्यवहार होता है कि गोशब्द का उच्चारण आठ बार किया गया। कोई ऐसा नहीं कहता है कि आठ गो शब्दों का उच्चारण हुआ। इससे सिद्ध होता है कि एक ही शब्द की प्रत्यभिज्ञा होती है कि यह शब्द वही है (स एवायं शब्दः)। न हमारा ज्ञान दोषपूर्ण है, न हमारी इन्द्रियों में (ज्ञानकरणो में) कोई दोष है। सभी लोगों को ऐसी प्रत्यभिज्ञा होती है। इन सभी लोगों के ज्ञान को हम व्यामोह नहीं कह सकते। एक ही शब्द की प्रत्यभिज्ञा को हम अनेक शब्दों का ज्ञान नहीं कह सकते। किसी प्रमाण से यह सिद्ध नहीं होता है। प्रत्यभिज्ञा को हम शब्द की नित्यता सिद्ध करने के लिए हेतु के रूप में नहीं दे रहे हैं। हमारा केवल यही कहना है कि शब्द की अनित्यता का पक्ष प्रत्यक्ष-प्रमाण के भी विरुद्ध हैं। शब्द की अनित्यता की सिद्धि के लिए आप जहां केवल अनुमान-प्रमाण को लगाते हैं, वहां नित्यता की सिद्धि के लिए अनुमान के अतिरिक्त प्रत्यक्ष का भी समर्थन मिल जाता हैं।

यह आक्षेप किया जा सकता है कि कल जिस गो शब्द का उच्चारण किया गया था वह तो समाप्त हो गया-इसलिए आज सुनाई पडने वाला गो शब्द सर्वथा नवीन होगा। किन्तु तथ्य यह नहीं है। किसी वस्तु को देखकर, कुछ समय तक न देखने पर भी, पुनः देखकर लोग उसे पहचान लेते हैं कि यह वही वस्तु है। यह कल्पना भी नहीं आती कि पहली वस्तु नष्ट हो चुकी है और यह सामने वाली वस्तु नयी है। किसी वस्तु की सत्ता समाप्त होने का अर्थ है कि उसका ज्ञान किसी प्रमाण से नहीं हो सकता है। प्रस्तुत स्थल में

---

19 मीमांसा सूत्र -१८

20 शाङ्करभाष्य (१। १।१८ - अथ न विनष्टस्ततो बहुश उपलव्यत्वादर्थावगम इति

21 मीमांसा सूत्र-१९

22 मीमांसा सूत्र -२०

तो वस्तुतः शब्द का प्रत्यभिज्ञा के द्वारा, प्रत्यक्ष ही होता है। तब इसकी सत्ता कैसे समाप्त हुई? इस प्रकार शब्द की निरंतर सत्ता का सिद्धान्त ही ठीक है। किसी शब्द को यदि उच्चारित नहीं किया गया हो तो भी उसकी सत्ता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। किसी का अप्रत्यक्ष होना उसकी असत्ता का कारण नहीं हो सकता है। क्षणभङ्गवादी भी शब्द की नित्यता का विरोध नहीं कर सकते। अन्य वस्तुओं का विनाश देखकर वे क्षणभंगवाद का समर्थन करते हैं। शब्द का विनाश नहीं देखा जाता। अतः शब्द नित्य है।

अनपेक्षत्वात्[23] **-** जिन वस्तुओं की उत्पत्ति नहीं देखी जाती है, केवल सत्ता दिखलाई पडती है। वे वस्तुएँ भी अनित्य ही हैं यदि उनके विनाश का कोई समर्थ कारण प्राप्त हो। नये वस्त्र को बनते आपने नहीं भी देखा हो किन्तु जानते हैं कि इसमें तन्तुओं का समूह है। उस समूह के विखरने से या तन्तुओ के नाश से वस्त्र नष्ट हो जाएगा। इसलिए वस्त्र को अनित्य मानते हैं। शब्द के विनाश का ऐसा कोई समर्थ कारण नहीं मिलता। अतः शब्द नित्य हैं।

प्रख्याभावाच्च [24]**-** योगस्य-कुछ लोग शब्द का कारण वायु को मानकर शब्द की अनित्यता सिद्ध करते हैं। शिक्षाकारों ने कहा- **'वायुरापद्यते शब्दताम्'** अर्थात् वायु ही ऊपर उठकर संयोग-विभागों के द्वारा शब्द का रूप ले लेती है। यह तथ्य नहीं है। यदि शब्द वायु-जन्य होता है तो वायु के धर्म इसमें अवश्य होने चाहिए। शब्द में न तो वायु के अवयव पाये जाते हैं और न हम शब्द का स्पर्श कर सकते हैं। जबकि वायु का स्पर्श संभव है। अतः वायु-जन्य शब्द नहीं होता है। इसलिए शब्द नित्य है।

लिङ्गदर्शनाच्च[25] **-** वैदिक वाक्यों में भी शब्द की नित्यता का निर्देश है। दूसरे प्रसंग में आया हुआ वाक्य शब्द की नित्यता का द्योतन करता है।[26] वाचा विरूप-नित्यया (रूपरहित तथा नित्य वाणी या शब्द के द्वारा...) । इन सभी तर्कों से शब्द की नित्यता सिद्ध होती है।

उपर्युक्त पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष को उपस्थित करने के पश्चात् यह निश्चित होता है कि शब्द नित्य है। जिन आशंकाओं को पूर्वपक्ष ने उपस्थित किया है। उनका उत्तरपक्ष में बडे ही युक्तिपूर्ण ढंग से खण्ड किया है तथा शब्द का नित्यत्व प्रतिपादित किया है। पूर्व के कुछ सूत्रों में शब्द के अनित्य पक्ष को निषेध पूर्वक खण्डित किया गया है और फिर शब्द नित्यत्व के समर्थन में कुछ सूत्रों से शब्द का नित्यत्व प्रतिपादित किया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

१. मीमांसादर्शनम्,टी.उमा शंकर ऋषि, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन:२००७
२. मीमांसादर्शनम्, ले. मण्डनमिश्र, श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रिय विद्यापीठ:१९८३
३. महाभाष्यम्, व्या. युधिष्ठिर मीमांसक, कपूर ट्रस्ट,सोनीपत :१९९९
४. वाक्यपदीयम्, व्या. शिवशङ्कर अवस्थी, चौखम्बा विद्याभवन:२०१३
५. वैशेषिकदर्शने शब्दार्थविमर्शः, ले. विश्वेश, विद्यानिधि प्रकाशन:२०१४

23 मीमांसा सूत्र -२१

24 मीमांसा सूत्र -२२

25 मीमांसा सूत्र २३

26 अन्यार्थप्रतिपादनपरं वाक्यं प्रकृतसमर्थकं लिङ्गम्